दुर्गा प्रसाद सोढ़ी बनाम पंजाब राज्य, आदि (जस्टिस महाजन)
आई. एल। आर. पंजाब और हरियाणा (1975) 2

एन. के. एस.

सिविल संदर्भ

जस्टिस डी.के. महाजन और जस्टिस सी.जी. सूरी के समक्ष

याचिकाकर्ता - दुर्गा प्रसाद सोढ़ी

बनाम

प्रतिवादी - पंजाब राज्य, आदि

1970 का सिविल संदर्भ संख्या 6

11 सितंबर 1973

भारतीय पेंशन अधिनियम (1871 का XXIII) - धारा 4 - पंजाब सिविल सेवा नियम, खंड II - नियम 6.ए - भारत का संविधान (1950) - अनुच्छेद 19(1) (एफ) - पेंशन का अधिकार - चाहे 'संपत्ति' हो और सिविल न्यायालय में प्रवर्तनीय - धारा 4 ऐसे प्रवर्तन पर रोक लगाती है - चाहे अधिकारातीत हो अनुच्छेद 19(1) (एफ) - नियम 6.4 - चाहे शून्य भी हो।

माना गया कि पेंशन का अधिकार संपत्ति है और यह अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) द्वारा गारंटीकृत है। यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 दोनों के तहत लागू करने योग्य है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि इसे नियमित मुकदमे द्वारा लागू नहीं किया जा सके। भारतीय पेंशन अधिनियम 1871 की धारा 4 में सामान्य सिविल अदालतों में इस अधिकार को लागू करने पर रोक उस समय लगाई गई थी जब इस अधिकार को केवल इनाम के रूप में माना जाता था, न कि संपत्ति या संपत्ति में अधिकार के रूप में। इस अधिकार की प्रकृति के बारे में बदली हुई अवधारणा के मद्देनजर अधिनियम की धारा 4 द्वारा बनाई गई रोक अब लागू नहीं है और इसलिए यह धारा संविधान के अनुच्छेद 19(1) (एफ) के अधिकारातीत है। तर्क की समानता के आधार पर पंजाब सिविल सेवा नियम खंड II का नियम 6.4 भी शून्य है।

मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए माननीय श्री न्यायमूर्ति सी.जी. सूरी द्वारा दिनांक 15 दिसंबर 1971 के आदेश के तहत मामला एक बड़ी पीठ को भेजा गया। माननीय श्री न्यायमूर्ति डी.के. महाजन और माननीय श्री न्यायमूर्ति सी.जी. सूरी की खंडपीठ ने अंततः 11 सितंबर 1973 को मामले का फैसला किया।

धारा 113 सी.पी.सी. के तहत संदर्भ श्री एम. एम. मलिक, वरिष्ठ उप-न्यायाधीश अंबाला द्वारा इस माननीय न्यायालय को अपने आदेश दिनांक 31 अगस्त, 1970 के तहत कानून के निम्नलिखित प्रश्न पर राय के लिए बनाया गया था।

"क्या भारतीय पेंशन अधिनियम की धारा 4 और (या) पंजाब सिविल सेवा नियमों के नियम 6.4 के प्रावधान वादी के पैरा 5 में उल्लिखित आधारों के लिए अवैध, शून्य, असंवैधानिक और अधिकारेतर हैं?

याचिकाकर्ता की ओर से वकील, एस.के. जैन और एन.के. सोढ़ी

प्रतिवादियों की ओर वकील से जे.एस. बिंद्रा

निर्णय

न्यायमूर्ति डी.के. महाजन - इस मामले को वरिष्ठ अधीनस्थ न्यायाधीश, अंबाला द्वारा नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 113 के तहत संदर्भित किया गया है। यह सन्दर्भ पहले मेरे विद्वान भाई के सामने आया था। मेरे विद्वान भाई ने 15 दिसंबर 1971 के अपने आदेश द्वारा निर्देश दिया कि इसे एक बड़ी पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए रखा जाए। इस तरह मामला हमारे सामने रखा गया है ।

(2) इस सन्दर्भ को जन्म देने वाले तथ्य इस प्रकार हैं:-

वादी, जो प्रासंगिक समय पर पी.सी.एस. का सदस्य था। (न्यायिक) 6 फरवरी, 1958 को सेवानिवृत्त हुए। तब तक उन्होंने 26 वर्ष की सेवा पूरी कर ली थी। पेंशन संबंधी नियमों के अनुसार वह 1000 रुपये का हकदार था। 345 प्रति माह पेंशन और रु. ग्रेच्युटी के रूप में 11,092.50 रु. अंतरिम उपाय के रूप में वादी को रुपये की अग्रिम पेंशन दी गई थी। 300 प्रति माह और राशि रु. महालेखाकार-पंजाब द्वारा ग्रेच्युटी के मद में 8,000 रु. याचिकाकर्ता के पेंशन मामले का फैसला करते हुए राज्य सरकार ने पेंशन में प्रति माह 172.48 रुपये और मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति ग्रेच्युटी में 5546.25 रुपये की कटौती की।

वादी ने एक मामला **दायर किया**

पंजाब के राज्यपाल के लिए स्मारक और अंततः मामला था

राज्य स्थापना बोर्ड द्वारा विचार किया गया। नतीजा यह हुआ कि पेंशन में पहले की तुलना में प्रति माह 45 रुपये की कटौती की गयी

प्रति माह 172.48 रुपये की कटौती और ग्रेच्युटी में कटौती से कम किया गया

5546.25 रुपये से 1,500 रुपये. वादी असंतुष्ट था. उन्होंने वरिष्ठ अधीनस्थ न्यायाधीश, अंबाला की अदालत में मुकदमा दायर किया

कटौती को अवैध, अधिकार क्षेत्र से बाहर, असंवैधानिक और असंवैधानिक बताते हुए आदेश दिया

दुर्भावनापूर्ण. मुक़दमे के दौरान राज्य सरकार ने लिया

दलील दी गई कि पंजाब सिविल सेवा नियम, खंड II के नियम 6.4 के साथ पठित भारतीय पेंशन अधिनियम की धारा 4 के मद्देनजर मुकदमा सक्षम नहीं था। जब यह मामला कई प्राधिकारियों के विचार के बाद वरिष्ठ अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष आया, तो विद्वान न्यायाधीश का अस्थायी तौर पर मानना था कि भारत पेंशन अधिनियम की धारा 4 और पंजाब सिविल सेवा नियम खंड II के नियम 6.4 के प्रावधान दिखाई देते हैं। प्रथम दृष्टया अमान्य होना। वरिष्ठ अधीनस्थ न्यायाधीश, अंबाला, जिन्होंने वादी-याचिकाकर्ता द्वारा दायर मुकदमे को जब्त कर लिया था, ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 113 के तहत इस न्यायालय के निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रश्न का उल्लेख किया: -

"क्या भारतीय पेंशन अधिनियम की धारा 4 और (या) पंजाब सिविल सेवा नियमों के नियम 6.4 के प्रावधान वादी के पैरा 5 में उल्लिखित आधारों के लिए अवैध, शून्य, असंवैधानिक और अधिकारातीत हैं?"

(3) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री एस.के. जैन का तर्क यह है कि पेंशन अधिनियम की धारा 4 (बाद में अधिनियम के रूप में संदर्भित) भारत के संविधान के अनुच्छेद 13 और 19 से प्रभावित है। यह आग्रह किया जाता है कि जिस समय इसे अधिनियमित किया गया था, उस समय पेंशन को संपत्ति नहीं बल्कि एक मात्र इनाम माना जाता था जैसा कि एक सरकारी कर्मचारी के वेतन के संबंध में होता था। भारत का संविधान लागू होने से पहले, कई निर्णयों में यह माना गया था कि किसी सरकारी कर्मचारी को अपने वेतन की बकाया राशि की वसूली के लिए मुकदमा दायर करने का कोई अधिकार नहीं है। यह सच है कि वेतन के मामले में मुकदमे में कोई स्पष्ट वैधानिक बाधा नहीं थी। लेकिन जहां तक सामान्य सिविल न्यायालयों में पेंशन की वसूली के दावे के प्रवर्तन का संबंध है, अधिनियम की धारा 4 ने एक स्पष्ट रोक लगा दी है। तर्क यह है कि संविधान के लागू होने से स्थिति बदल गई है। अब बकाया वेतन की वसूली मुकदमे द्वारा की जा सकती है और तर्क की समानता पर यह आग्रह किया जाता है कि यद्यपि अधिनियम की धारा 4 में मुकदमे पर एक विशिष्ट रोक है, जहां तक

पेंशन का संबंध है, यह प्रावधान अनुच्छेद 13 के कारण शून्य हो गया है। और भारत के संविधान के 19. के.आर. एरी बनाम पंजाब राज्य (1) में इस न्यायालय के फैसले की ओर ध्यान

(1) आई. एल. आर. 1967 (1) पंजाब और हरियाणा 278.

आकर्षित किया गया है, जिसमें संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में यह माना गया था कि पेंशन का अधिकार संपत्ति है और उस अधिकार को लागू करने के लिए एक रिट याचिका सक्षम है। पंजाब राज्य बनाम के.आर. एरी (2) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस निर्णय की पुष्टि की गई थी। इस बात पर जोर दिया गया है कि यह अब कानून का एक स्थापित प्रस्ताव है कि पेंशन का अधिकार संपत्ति है, और यदि ऐसा है तो अधिकार को सिविल अदालतों में लागू किया जा सकता है क्योंकि प्रत्येक नागरिक अधिकार के कार्यान्वयन के लिए, उचित उपाय देश की सामान्य अदालतों में निहित है। भूमि, और यह नहीं कहा जा सकता कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत उपलब्ध उपाय पर्याप्त उपाय है क्योंकि इन अनुच्छेदों के तहत राहत देना सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है। तर्क का मुख्य बोझ यह है कि बदली हुई स्थिति के मद्देनजर धारा 4 की रोक, भारत के संविधान के अनुच्छेद 13 और 19 में सन्निहित संवैधानिक प्रावधानों के मद्देनजर शून्य है।

(4) इस प्रकार, संक्षिप्त प्रश्न जिसके निर्धारण की आवश्यकता है वह यह है कि क्या अधिनियम की धारा 4 शून्य है और यदि धारा 4 शून्य है, तो इसे दोनों हाथों से स्वीकार

(2) ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 334.

किया जाता है, मुकदमे के माध्यम से उपचार वादी के लिए उपलब्ध होगा।

(5) इससे पहले कि मैं इस प्रश्न से निपटने के लिए आगे बढ़ूं, अधिनियम का संदर्भ लेना उचित होगा। यह अधिनियम वर्ष 1871 में अधिनियमित किया गया था और कानून अनुकूलन आदेश 1950 द्वारा अपनाया गया था। जिस समय अधिनियम लागू किया गया था उस समय पेंशन के अधिकार को संपत्ति नहीं माना जाता था। इसे केवल एक इनाम या राज्य द्वारा नौकर के लिए अनुग्रह का मामला माना जाता था ।

(6) अधिनियम की धारा 4 निम्नलिखित शर्तों में है: -

"4. इसके बाद दिए गए प्रावधानों को छोड़कर, कोई भी सिविल न्यायालय सरकार या किसी पूर्व सरकार द्वारा प्रदत्त या किए गए किसी भी पेंशन या धन अनुदान या भूमि-राजस्व से संबंधित किसी भी मुकदमे पर विचार नहीं करेगा, चाहे ऐसी किसी भी पेंशन या अनुदान के लिए विचार किया गया हो और जो कुछ भी हो। भुगतान, दावे

या अधिकार की प्रकृति रही है जिसके लिए ऐसी पेंशन या अनुदान प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

धारा 5 में प्रावधान है कि पेंशन या अनुदान से संबंधित कोई भी दावा जिला कलेक्टर या उपायुक्त या इस संबंध में अधिकृत अन्य अधिकारी को किया जा सकता है और उक्त अधिकारी समय-समय पर निर्धारित नियमों के अनुसार ऐसे दावे का निपटान करेगा। धारा 6 सिविल कोर्ट को धारा 5 में उल्लिखित अधिकारियों से प्रमाण पत्र प्राप्त करने पर इस तरह के दावे की सुनवाई करने का अधिकार देती है, लेकिन उसे एक डिक्री पारित करने से रोकती है जिसके द्वारा सरकार की ऐसी पेंशन या अनुदान का भुगतान करने का दायित्व प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है।

(7) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 निम्नलिखित शर्तों में है: -

"9. न्यायालयों को (यहां निहित प्रावधानों के अधीन) उन मुकदमों को छोड़कर, जिनमें उनका संज्ञान स्पष्ट रूप से या परोक्ष रूप से वर्जित है, दीवानी प्रकृति के सभी मुकदमों की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र होगा।

स्पष्टीकरण-एक मुकदमा जिसमें संपत्ति या किसी कार्यालय के अधिकार का विरोध किया जाता है, एक नागरिक प्रकृति का मुकदमा है, भले ही ऐसा अधिकार पूरी तरह से धार्मिक संस्कारों या समारोहों के प्रश्नों के निर्णय पर निर्भर हो सकता है।

(8) सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 पर खुद को आधारित करते हुए, राज्य के वकील का आग्रह है कि धारा 4 के तहत मुकदमा करने का अधिकार स्पष्ट रूप से वर्जित है और इसे इस प्रकार वर्जित किया जा सकता है और इसलिए, धारा 4 को भारत के संविधान का अनुच्छेद 13 या अनुच्छेद 19 को अधिकारातीत अनुच्छेद नहीं कहा जा सकता है। उन्होंने इस तथ्य पर प्रकाश डाला कि संपत्ति का अधिकार, जिसके निर्णय पर सिविल न्यायालयों द्वारा रोक लगा दी गई है, को भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 का सहारा लेकर लागू किया जा सकता है और उनके अनुसार ये अनुच्छेद वैकल्पिक उपाय प्रदान करते हैं और इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है। कि धारा 4 के कारण वादी के पास कोई उपचार नहीं है।

(9) भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 निम्नलिखित शब्दों में हैं: -

"32. (1) इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उचित कार्यवाही द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में जाने के अधिकार की गारंटी है। (2) सर्वोच्च न्यायालय के पास

निर्देश या आदेश या रिट जारी करने की शक्ति होगी, जिसमें बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, अधिकार वारंटो और सर्टिओरारी की प्रकृति की रिट शामिल हैं, जो इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी के प्रवर्तन के लिए उपयुक्त हो सकती हैं।

(3) .....

(4) .....

226. (1) अनुच्छेद 32 में किसी बात के बावजूद, प्रत्येक उच्च न्यायालय के पास उन सभी क्षेत्रों में शक्ति होगी, जिनके संबंध में वह किसी भी व्यक्ति या प्राधिकारी को उचित मामलों में दिशा-निर्देश, आदेश या रिट जारी करने का अधिकार रखता है। भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी के प्रवर्तन के लिए और किसी अन्य उद्देश्य के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, अधिकार वारंटो और उत्प्रेषण या उनमें से किसी की प्रकृति में रिट शामिल हैं।

(आईए) किसी सरकार, प्राधिकरण या व्यक्ति को निर्देश, आदेश या रिट जारी करने के लिए खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग उन क्षेत्रों के संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले किसी भी उच्च न्यायालय द्वारा भी किया जा सकता है जिसके भीतर कार्रवाई का कारण पूरी तरह या आंशिक रूप से है। ऐसी शक्ति के प्रयोग के लिए

उत्पन्न होता है, भले ही ऐसी सरकार या प्राधिकरण की सीट या ऐसे व्यक्ति का निवास उन क्षेत्रों के भीतर नहीं है।

(2) खंड (1) या खंड (1ए) द्वारा उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति अनुच्छेद 32 के खंड (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्ति का अपमान नहीं होगा।

(10) जहां तक भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 का सवाल है, यह केवल भाग III, यानी मौलिक अधिकारों द्वारा प्रदत्त अधिकारों या प्रवर्तन के लिए उचित कार्यवाही द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में जाने के अधिकार की गारंटी देता है। यह अनुच्छेद सर्वोच्च न्यायालय को भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तन के लिए निर्देश या आदेश या रिट जारी करने की शक्ति देता है। अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालय को भाग III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए और उसके अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य के लिए अनुच्छेद 32 में निर्दिष्ट रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करता है।

(11) इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होगा कि मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए संविधान स्वयं प्रावधान करता है। मौलिक अधिकार संविधान की रचना हैं और जैसा

कि पहले ही कहा गया है कि उनके प्रवर्तन के लिए संविधान में एक मशीनरी मौजूद है।

(12) उपरोक्त प्रावधानों की पृष्ठभूमि में श्री जैन के तर्क की जांच की जानी चाहिए जो पूरी तरह से सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर आधारित है: -

1. इलूरी सुब्बैया चेट्टी एंड संस की फर्म बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (3)।

2. श्रीमान / श्रीमती कमला मिल्स लिमिटेड बनाम बॉम्बे राज्य (4)।

3. केरल राज्य बनाम श्रीमान / श्रीमती एन. रामास्वामी अय्यर एंड संस (5)।

4. कांतिलाल बाबूलाल और ब्रदर्स, बनाम एच. सी. पटेल और अन्य (6),

और

(13) संक्षेप में उनका तर्क यह है कि जो कानून मुकदमे का अधिकार छीनता है, उसे उस अधिकार के प्रवर्तन के लिए एक वैकल्पिक उपाय प्रदान करना चाहिए और यह खोजने के लिए उस कानून के बाहर जाना वैध नहीं होगा कि कहीं और कोई

वैकल्पिक उपाय है। . उनका कहना है कि यदि कानून एक वैकल्पिक और पर्याप्त उपाय प्रदान करता है, तो अदालतें सिविल अदालतों के अधिकार क्षेत्र के बहिष्कार को बरकरार

(3) ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 322.
(4) ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1942.
(5) ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1738.
(6) ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 445.

रखेंगी यदि इसे या तो स्पष्ट रूप से वर्जित किया गया है या आवश्यक निहितार्थ से इसे वर्जित माना जा सकता है।

(14) अब मैं इन निर्णयों के अनुपात की जांच करने का प्रस्ताव करता हूं। उपरोक्त निर्णयों में जिन मूल निर्णयों पर विचार किया गया है वे सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम मास्क एंड कंपनी (7) और रैले इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम गवर्नर-जनरल इन काउंसिल (8) में प्रिवी काउंसिल के हैं।

(15) सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम मास्क एंड कंपनी मामले में, प्रिवी काउंसिल समुद्री सीमा शुल्क अधिनियम (1878 का अधिनियम 8) की धारा 188 में निहित प्रावधानों

के प्रभाव से निपट रही थी। यह प्रावधान जहां तक प्रासंगिक है, यह था कि "इस धारा के तहत अपील में पारित प्रत्येक आदेश धारा 191 द्वारा प्रदत्त पुनरीक्षण की शक्ति के अधीन होगा जो अंतिम होगा"। इस प्रावधान के प्रभाव के बारे में प्रश्न से निपटते समय प्रिवी काउंसिल ने पाया कि: -

(7) ए. आई. आर. 1940 पी. सी. 105.
(8) ए. आई. आर. 1947 पी. सी. 78.

"यह स्थापित कानून है कि सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के बहिष्कार का तुरंत अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए, लेकिन इस तरह के बहिष्कार को या तो स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाना चाहिए या स्पष्ट रूप से निहित होना चाहिए।"

हालाँकि, यह देखा गया कि जहां विधायिका का एक अधिनियम एक दायित्व बनाता है और इसके निर्धारण के लिए एक विशेष संहिता प्रदान करता है, उस दायित्व को मुकदमे द्वारा लागू करने का अधिकार छीना जा सकता है। रेखांकित शब्द मेरे हैं, और मैं लॉर्ड थैंकर्टन की राय में निम्नलिखित अंश को ध्यान में रखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ: -

"उत्तरदाताओं की ओर से यह प्रस्तुत किया गया था कि नागरिक न्यायालयों में विषय के अधिकार का बहिष्कार भारत सरकार अधिनियम 1915 की धारा 32 के प्रावधानों के मद्देनजर भारतीय विधायिका के अधिकार के बाहर होगा, जिसने धारा 65 को फिर से अधिनियमित किया है। 1858 के भारत अधिनियम में, और राज्य सचिव बनाम मोमेंट जे (9) का संदर्भ दिया गया था जो भूमि पर अत्याचारपूर्ण अतिक्रमण का मामला

(9) 40 आई. ए. 48.

था। लेकिन उनकी आधिपत्य राय में न तो धारा 32 और न ही 40 आईए, 48 में निर्णय

में शामिल सिद्धांत भारतीय विधानमंडल के एक अधिनियम की वैधता को प्रभावित करते हैं जो एक दायित्व बनाता है और इसके निर्धारण के लिए एक विशेष कोड प्रदान करता है, ऐसा दायित्व धारा 32 की उपधारा (2) द्वारा कवर नहीं किया जाता है।

(16) रैले इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम गवर्नर-जनरल इन काउंसिल (8) में यह प्रश्न निर्धारण के लिए उठा कि क्या मूल्यांकन के तहत कर के पुनर्भुगतान का दावा करने वाले काउंसिल में गवर्नर जनरल के खिलाफ सिविल न्यायालयों में मुकदमा दायर

किया जा सकता है। आयकर अधिनियम 1922 की धारा 67 के प्रावधानों को देखें। वह धारा इस प्रकार चलती है: -

"इस अधिनियम के तहत किए गए किसी भी मूल्यांकन को रद्द करने या संशोधित करने के लिए किसी भी सिविल कोर्ट में कोई मुकदमा नहीं लाया जाएगा और अधिनियम के तहत सद्भावना से किए गए या किए जाने वाले किसी भी काम के लिए क्राउन के किसी भी अधिकारी के खिलाफ कोई अभियोजन मुकदमा या अन्य कार्यवाही नहीं की जाएगी।"

प्रिवी काउंसिल के समक्ष निर्धारिती का तर्क यह था कि जिस मूल्यांकन के तहत कर की वसूली की गई थी वह अधिनियम के तहत किया गया मूल्यांकन नहीं था और इसलिए सिविल मुकदमा सक्षम था। इस विवाद का खंडन करते हुए यह कहा गया:-

"उनके आधिपत्य के विचार में यह स्पष्ट है कि आयकर अधिनियम 1922, जैसा कि प्रासंगिक तिथि पर था, ने निर्धारिती को उस पर किए गए मूल्यांकन के संबंध में प्रभावी ढंग से यह सवाल उठाने का अधिकार दिया कि क्या अधिनियम में कोई प्रावधान है या नहीं अधिकारातीत था. धारा 30 के तहत एक निर्धारिती जिसकी

शिकायत का एकमात्र आधार यह था कि मूल्यांकन में एक प्रावधान को प्रभाव दिया गया था, जिसके बारे में उसका तर्क था कि वह अधिकारातीत था, वह मूल्यांकन के खिलाफ अपील कर सकता है। यदि वह अपील पर निर्णय से असंतुष्ट था - प्रक्रिया से संबंधित विवरण सारहीन हैं - तो निर्धारिती कानून के किसी भी प्रश्न पर उच्च न्यायालय की राय के लिए मामले को बताने के लिए कह सकता है और यदि उसके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया जाता है तो वह आवेदन कर सकता है। किसी मामले को बताने और उसे उच्च न्यायालय में भेजने की आवश्यकता वाले आदेश के लिए उच्च न्यायालय में (धारा 30

और राज्य सचिव बनाम मेयप्पा चेट्टियार (10) देखें। इसमें संदेह नहीं किया जा सकता है कि इसे कानून के प्रश्नों में शामिल किया जा सकता है) किसी मामले में यह कहा गया है कि आयकर अधिनियम में किसी भी कर प्रावधान की वैधता के बारे में कोई प्रश्न है जिसका प्रभाव समीक्षाधीन मूल्यांकन में दिया गया है। कानून के उस प्रश्न पर उच्च न्यायालय के किसी भी निर्णय की समीक्षा की जा सकती है अपील। इसलिए किसी भी मूल्यांकन के कानून के आधार पर समीक्षा के लिए अधिनियम द्वारा ही

प्रभावी और उचित मशीनरी प्रदान की जाती है। यह उस सेटिंग में है कि धारा 67 का अर्थ लगाया जाना है।

उनके आधिपत्य के दृष्टिकोण में अनुभाग का निर्माण स्पष्ट है। अधिनियम के तहत आयकर अधिकारी पर निर्धारिती की कुल आय का आकलन करने का कर्तव्य लगाया गया है। स्पष्ट अर्थ और उनके आधिपत्य की राय में 'अधिनियम के तहत किया गया मूल्यांकन' वाक्यांश का सही अर्थ एक मूल्यांकन है जो इस तरह कार्य करने वाले मूल्यांकन अधिकारी की गतिविधि में अपनी उत्पत्ति पाता है। यह परिस्थिति कि मूल्यांकन अधिकारी ने अधिनियम के एक अधिकारातीत प्रावधान को ध्यान में रखा

(10) 4 आई. टी. आर. 341=आई. एल. आर. 1937 एमएडी 211

है, इस दृष्टि से यह निर्धारित करने में महत्वहीन है कि क्या मूल्यांकन 'अधिनियम के तहत

किया गया है'। वाक्यांश मूल्यांकन की उत्पत्ति का वर्णन करता है: यह कानून के बिंदु पर इसकी सटीकता से संबंधित नहीं है। अधिनियम द्वारा प्रदान की गई मशीनरी का उपयोग, न कि उस उपयोग का परिणाम परीक्षण है।"

(17) फर्म ऑफ लल्लूरी सुब्बैया चेट्टी एंड संस बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (3) में निर्धारण के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उठा, वह यह था कि क्या अपीलकर्ता द्वारा इस आधार पर बिक्री-कर वसूलने के लिए मुकदमा दायर किया गया था कि यह अवैध रूप से वसूल किया गया है इसे मद्रास जनरल सेल्स टैक्स एक्ट (1939 का 9) की धारा 18ए के प्रावधानों द्वारा वर्जित किया गया था। यह खंड इस प्रकार पढ़ता है: -

"इस अधिनियम में स्पष्ट रूप से दिए गए प्रावधान के अलावा इस अधिनियम के तहत किए गए किसी भी मूल्यांकन को रद्द करने या संशोधित करने के लिए किसी भी न्यायालय में कोई मुकदमा या अन्य कार्यवाही शुरू नहीं की जाएगी।

प्रिवी काउंसिल के दो निर्णयों का उल्लेख करने के बाद, जिनका मैं पहले ही उल्लेख कर चुका हूँ, यह देखा गया: -

"लेकिन अपील के माध्यम से वैकल्पिक तंत्र की उपस्थिति जो एक विशेष क़ानून गुण-दोष के आधार पर मूल्यांकन आदेश से पीड़ित पक्ष को प्रदान करता है, एक प्रासंगिक विचार है और वह विचार उस अधिनियम से संतुष्ट है जिसके साथ हम वर्तमान अपील में चिंतित हैं।"

(18) मैसर्स में. कमला मिल्स लिमिटेड बनाम बॉम्बे राज्य (4), विद्वान मुख्य न्यायाधीश, जिन्होंने न्यायालय के लिए बात की, उन निर्णयों पर ध्यान देने के बाद जिनका मैंने पहले ही उल्लेख किया है, उन्होंने कहा: -

प्रत्येक मामले में, सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ से बाहर करने के प्रश्न पर उस वैधानिक प्रावधान में प्रयुक्त शब्दों के प्रकाश में विचार किया जाना चाहिए जिस पर याचिका टिकी हुई है, प्रासंगिक प्रावधानों की योजना, उनके वस्तु और उनका उद्देश्य.....

इस मामले का एक और पहलू है जिस पर अंतिम रूप से सवाल निर्धारित करने से पहले विचार किया जाना चाहिए कि क्या धारा 20 वर्तमान मुकदमे पर विचार करने में सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को बाहर करती है। जब भी किसी सिविल न्यायालय के समक्ष यह आग्रह किया जाता है कि उसके अधिकार क्षेत्र को नागरिक प्रकृति के दावों पर विचार करने के लिए स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ से बाहर रखा गया है, तो न्यायालय स्वाभाविक रूप से इस पर विचार करने के लिए इच्छुक महसूस करता है कि क्या एक विशेष क़ानून द्वारा निर्धारित वैकल्पिक प्रावधान द्वारा प्रदान किया गया उपाय पर्याप्त या पर्याप्त है। . ऐसे मामलों में जहां सिविल अदालतों के अधिकार क्षेत्र का बहिष्कार स्पष्ट रूप से विचाराधीन क़ानून की योजना पर विचार

करने के लिए प्रदान किया गया है और इसके द्वारा प्रदान किए गए उपायों की पर्याप्तता या पर्याप्तता प्रासंगिक हो सकती है लेकिन निर्णायक नहीं हो सकती है। लेकिन जहां बहिष्करण को आवश्यक निहितार्थ के रूप में स्वीकार किया जाता है, ऐसे विचार बहुत महत्वपूर्ण होंगे और संभावित परिस्थितियों में निर्णायक भी हो सकते हैं। यदि ऐसा प्रतीत होता है कि कोई क़ानून एक विशेष अधिकार या दायित्व बनाता है और उस अधिकार और दायित्व के निर्धारण के लिए विशेष रूप से गठित न्यायाधिकरणों द्वारा निपटाए जाने का प्रावधान करता है और यह आगे बताता है कि उक्त अधिकार और दायित्व के बारे में सभी प्रश्न होंगे। इस प्रकार गठित न्यायाधिकरणों द्वारा निर्धारित यह जांच करना प्रासंगिक हो जाता है कि क्या सिविल अदालतों में आम तौर पर कार्रवाई से जुड़े उपचार उक्त क़ानून द्वारा निर्धारित हैं या नहीं...

यदि हम इस बात से संतुष्ट हैं कि अधिनियम अवैध रूप से एकत्र किए गए कर की वसूली के लिए दावा करने के लिए कोई उपाय प्रदान नहीं करता है और फिर भी धारा 20 एक सामान्य नागरिक अदालत के समक्ष ऐसा दावा करने पर रोक लगाती है, तो न्यायालय धारा 20 को पूर्ण रूप से बनाने में संकोच कर सकता है। बार, या यदि ऐसा निर्माण उचित रूप से संभव नहीं है, तो न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 19 और

31 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के ऐसे स्पष्ट बहिष्कार की संवैधानिकता के बारे में गंभीरता से सवाल की जांच कर सकता है। इस दोहरे उद्देश्य के साथ अब मामले के इस पहलू की जांच की जानी चाहिए...

यदि किसी नागरिक से अनाधिकृत रूप से कर की राशि वसूल कर अवैध रूप से उसकी संपत्ति से वंचित किया जाता है, जहां उससे ऐसा कोई कर वसूल नहीं किया जा सकता है, तो उसे राज्य के खिलाफ अपनी शिकायत व्यक्त करने के लिए उचित और उपयुक्त उपाय होना चाहिए। आम तौर पर, ऐसा उपाय एक साधारण सिविल अदालत के समक्ष लाए गए मुकदमे के रूप में होगा; यह कर क़ानून के प्रावधानों के तहत विशेष रूप से नियुक्त न्यायाधिकरण के समक्ष एक कार्यवाही भी हो सकती है, और यह या तो अनुच्छेद 226 के तहत, या संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक उचित कार्यवाही भी हो सकती है.....

धारा 20 द्वारा बनाई गई रोक को स्पष्ट रूप से वहां प्रस्तुत नहीं किया जा सकता जहां धारा 20 की वैधता को ही चुनौती दी गई है। यह निश्चित रूप से एक अलग सूट द्वारा किया जा सकता है। संदर्भ में, धारा 20 उन मामलों तक ही सीमित है जहां अधिनियम के तहत किए गए मूल्यांकन आदेशों की वैधता को चुनौती दी गई है। उक्त प्रावधान

स्वयं धारा 20 की वैधता को चुनौती नहीं दे सकता है, और इसलिए, हमें यह मानना चाहिए कि तकनीकी रूप से अपीलकर्ता का मुकदमा धारा 20 की वैधता को चुनौती देने के मामले में सक्षम है।

(19) केरल राज्य बनाम श्रीमान/श्रीमती एन. रामास्वामी अय्यर एंड संस (5) में त्रावणकोर-कोचीन सामान्य बिक्री कर अधिनियम (1125 एम.ई. का द्वितीय) की धारा 23-ए विचाराधीन है । यह निम्नलिखित शब्दों में है:-

"इस अधिनियम में स्पष्ट रूप से दिए गए प्रावधान के अलावा इस अधिनियम के तहत किए गए किसी भी मूल्यांकन को रद्द करने या संशोधित करने के लिए किसी भी अदालत में कोई मुकदमा या अन्य नागरिक कार्यवाही शुरू नहीं की जाएगी।"

उपरोक्त प्रावधान के उचित निर्माण पर इस मामले में यह माना गया कि देय राशि से अधिक भुगतान किए गए कर की वसूली के लिए मुकदमा आवश्यक निहितार्थ द्वारा वर्जित था। अन्य निर्णयों के अलावा, जिन निर्णयों का मैंने पहले ही उल्लेख किया है, उन पर भरोसा किया गया था। एकमात्र अतिरिक्त अवलोकन किया गया है: -

"यह सच है कि भले ही सिविल कोर्ट के क्षेत्राधिकार को बाहर रखा गया हो, जहां क़ानून के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है या वैधानिक न्यायाधिकरणों ने न्यायिक प्रक्रिया के मौलिक सिद्धांतों के अनुरूप काम नहीं किया है, सिविल अदालतों के पास उन मामलों की जांच करने का अधिकार क्षेत्र है।"

(20) कांतिलाल बाबूलाल और ब्रदर्स बनाम एच.सी. पटेल (6) में जो प्रश्न निर्धारित था वह यह था कि क्या बॉम्बे सेल्स टैक्स अधिनियम (1946 का 5) की धारा 12ए ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(एल)(एफ) का उल्लंघन किया है ? इस मामले पर जस्टिस हेज ने इस प्रकार टिप्पणी की : -

"आक्षेपित प्रावधान की उचित व्याख्या पर, हमें इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 12ए (4) के तहत प्रदत्त शक्ति अनिर्देशित, अनियंत्रित और अचयनित है। यह एक मनमानी शक्ति है. जैसा कि इस न्यायालय ने डॉ. एन. कानून के प्रक्रियात्मक भाग के साथ-साथ उसके मूल भाग पर भी उतना ही प्रभाव पड़ता है। मद्रास राज्य बनाम वी.जी. राव (12) में इस न्यायालय द्वारा उस दृष्टिकोण को दोहराया गया था जिसमें यह देखा गया था कि मौलिक अधिकारों पर प्रतिबंध लगाने वाले कानूनों की तर्कसंगतता पर विचार करते समय विवादित कानून के मूल और प्रक्रियात्मक दोनों

पहलुओं की जांच की जानी चाहिए। तर्कसंगतता की दृष्टि से. इस न्यायालय ने लगातार विचार किया है। इस मामले में जिस प्रावधान से हम चिंतित हैं, उस जैसा प्रावधान शायद ही उचित माना जा सकता है।"

(21) संक्षेप में स्थिति यह प्रतीत होती है। पेंशन का अधिकार संपत्ति है. यह अधिकार

(11) ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 211=1950 एस.सी.आर. 519.
(12) ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 196=1952 एस.सी.आर. 597.

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

अंकिता महाजन

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

कैथल, हरियाणा

भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(एल)(एफ) द्वारा गारंटीकृत है। संविधान स्वयं इसके प्रवर्तन के लिए एक संवैधानिक उपाय प्रदान करता है (संविधान का अनुच्छेद 32 देखें)। यह अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत भी लागू किया जा सकता है। मुझे कोई तर्क नजर नहीं आता कि इस अधिकार को देश की सामान्य सिविल अदालतों में क्यों लागू नहीं किया जा सकता। इस पर एकमात्र रोक अधिनियम की धारा 4 में है। यह उस समय बनाई गई रोक थी जब पेंशन के अधिकार को केवल एक इनाम माना जाता था, न कि संपत्ति का अधिकार। वह अवधारणा अब अच्छी नहीं रही। पेंशन अधिनियम उस अधिकार के प्रवर्तन के लिए पर्याप्त उपाय प्रदान नहीं करता है। चीज़ों की प्रकृति के कारण, वह ऐसा नहीं कर सका। एक पेंशनभोगी राज्य की दया पर निर्भर था। उसके पास कोई प्रवर्तनीय अधिकार नहीं था। इस प्रकार अधिनियम की धारा 4 द्वारा जो वर्जित था वह नागरिक अधिकार नहीं था क्योंकि ऐसा कोई अधिकार नहीं था। यदि धारा 4 अधिनियमित नहीं हुई

होती तो भी स्थिति वही होती जो सरकारी कर्मचारी के बकाया वेतन की वसूली के अधिकार के मामले में थी। इस प्रकार धारा 4 को केवल प्रचुर सावधानी के माध्यम से अधिनियमित किया गया था। मामले के इस पहलू को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता. इसलिए, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि श्री जैन का यह तर्क कि धारा 4 अधिकारातीत है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(एल)(एफ) में बल है। यह दूसरी बात होगी यदि धारा 4 ने अधिकार के प्रवर्तन के लिए पर्याप्त उपाय प्रदान किया होता और फिर पेंशन अधिनियम द्वारा एक नियमित मुकदमे द्वारा अधिकार के प्रवर्तन पर रोक लगा दी गई होती। उस आकस्मिक स्थिति में मस्क एंड कंपनी के मामले (7) (सुप्रा) में प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित नियम लागू होता। इस मामले पर मैंने जो दृष्टिकोण अपनाया है, उसे कमला मिल्स मामले (4) (सुप्रा) में निर्णय के अनुपात से पर्याप्त समर्थन मिलता है। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि पेंशन अधिनियम की धारा 4 भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 से प्रभावित है और तर्क की समानता के आधार पर पंजाब सिविल सेवा नियमों का नियम 6.4 भी अमान्य होगा।

(22) ऊपर दर्ज कारणों से नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 113 के तहत संदर्भित प्रश्न का उत्तर सकारात्मक होगा। आयोजन का खर्चा वहन होगा।

जस्टिस सूरी- मैं सहमत हूँ ।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

अंकिता महाजन
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
(Trainee Judicial Officer)
कैथल, हरियाणा

दुर्गा प्रसाद सोढ़ी बनाम पंजाब राज्य, आदि (जस्टिस महाजन)
आई. एल। आर. पंजाब और हरियाणा (1975) 2